

षष्ठोऽध्यायः

स्त्रीलक्षणसद्वृत्तवर्णनम्

स्त्रीलक्षणसद्वृत्त का वर्णन

शतानीक उवाच

सद्वृत्तं श्रोतुमिच्छामि देवस्त्रीणां सुविस्तरात्। उत्तमाधममध्यं च सम्बन्धे स्त्रीकृते यथा॥१॥
शतानीक कहते हैं— हे मुनिवर! अब मैं देवस्त्रीगण का वर्णन सुनना चाहता हूँ जिनको उत्तम, मध्यम, तथा अधम माना गया है॥१॥

सुमन्तुरुवाच

शतानीक महाबाहो ब्रह्मलोके पितामहः। उक्त्वा स लक्षणं स्त्रीणां सद्वृत्तं चोक्तवान्युनः॥२॥
यथोक्तं ब्रह्मणां तेषामृषीणां कुरुनन्दन। स प्रेयो वचनं श्रुत्वा ब्रह्मा वचनमब्रवीत्॥३॥
शृणुध्वं द्विजशार्दूलाः स्त्रीणां सद्वृत्तमादितः। वक्ष्ये युष्मानशेषं वै लोकानुग्रहकाम्यया॥४॥
त्रिवर्गप्राप्तये वक्ष्ये स्त्रीवृत्तं गृहमेधिनाम्। प्राग्विद्यादीनुपादाय तैरर्थाश्च यथाक्रमम्॥

विन्देत सदृशीं भार्या शास्त्रदृष्टेन कर्मणा॥५॥

गृहाश्रमो हि निःस्वानां महत्येषा विडम्बना। तस्मात्पूर्वमुपादेयं वित्तमेव गृहैषिणा॥६॥

सुमन्तु कहते हैं— हे महाबाहो शतानीक! ब्रह्मलोक में पितामह ने पहले स्त्रीगण का लक्षण कहा। फिर वे स्त्रीगण के सदाचार का वर्णन करने लगे। हे कुरुनन्दन! उन्होंने जिस प्रकार से ऋषिगण एवं ब्राह्मणगण से स्त्री के सदाचार का वर्णन किया वह इस प्रकार है— हे द्विजशार्दूलगण! पहले स्त्रीगण के सदाचार को सुनें। मैं लोकानुग्रहार्थ स्त्रीगण के सभी सदाचार का वर्णन कर रहा हूँ। जो गृहस्थधर्म का पालन कर रहे हैं उनको त्रिवर्ग धर्म, अर्थ, काम प्राप्त हो जाये, इस पावन लक्ष्य हेतु स्त्रीगण के सदाचार का वर्णन कर रहा हूँ। पहले विद्या का उपार्जन करके, उससे धन प्राप्त करने के, अनन्तर शास्त्रविधि का पालन करके, अपने अनुरूप स्त्री के साथ विवाह करे। निर्धन के लिये यह आश्रम बाधा तथा विडम्बना एवं दुःखरूप ही है। अतः गृहस्थाश्रम के आकांक्षी को सर्वाग्र में धनोपार्जन करना चाहिये॥२-६॥

वरं सोढा मनुष्येण तीव्रा नरकवेदना। न त्वेव च गृहे दृष्टं पुत्रदारक्षुधार्दितम्॥७॥
असम्भवे शिशुं दृष्ट्वा रुदन्तं प्रार्थनापरम्। वज्रसारमयं मन्ये हृदयं यन्न दीर्यते॥८॥
साध्वीं भार्यां प्रियां दृष्ट्वा कुचैलां क्षुत्कृशीकृताम्। अस्य दुःखस्य तन्नास्ति सुखं यत्समतां व्रजेत्॥९॥
रूक्षान्विवर्णान्क्षुधिताभूमिप्रस्तरशायिनः। पुत्रदारात्रिजान्दृष्ट्वा किमकार्यं भवेन्नृणाम्॥१०॥
बाहूत्तरीयं क्षुत्क्षामं दृष्ट्वा दीनमुखं सुतम्। मृत्युरेवोत्सवः पुंसां व्यसनं जीवितं द्विजाः॥११॥

व्यक्ति भले ही तीव्र नरक वेदना सहन कर ले, तथापि गृह में भूख से संतप्त स्त्री-पुत्रादि को देखना कदापि उचित नहीं है। वह चित्त मानो वज्र से रचित है जो असमर्थता के कारण किसी वस्तु के लिये लालायित बालक के रुदन को देखकर विदीर्ण नहीं

हो जाता। संसार में कोई ऐसा दुःख है ही नहीं जो साध्वी प्रियतमा को मलिन वस्त्रधारी तथा क्षुधा से दुर्बल अंगों वाली देखकर उसके साथ समानता कर सके। क्षुधा से पीड़ित तथा पत्थर की शिला और भूमि पर शायित अपने स्त्री-पुत्र को देखने वाले मनुष्य हेतु कुछ भी अकरणीय नहीं रह जाता। हे द्विजगण! क्षुधा से अत्यधिक पीड़ा पा रहे, वस्त्ररहित दीनमुखी प्रिय पुत्र को देखने से अच्छा है कि वह पुरुष मर ही जाये। ऐसा जीवन तो मात्र विडम्बना ही है॥७-११॥

परिसीदत्त्वपत्येषु दृष्ट्वा दीनमुखीं प्रियाम्। वज्रकार्यशरीरास्ते ये न यान्ति सहस्रधा॥ १२॥

तस्मादर्थविहीनस्य पुंसो दारपरिग्रहात्। कुतस्त्रिवर्गं संसिद्धिर्यातनैव हि तस्य सा॥ १३॥

अभार्यस्याधिकारोऽस्ति न द्वितीयाश्रमे यथा। तद्वदर्थविहीनानां सर्वत्र नाधिकरिता॥ १४॥

जो शरीर बालकों की क्षुधा से व्याकुल अपनी अतिशय दीनमुखी प्रियतमा को देखकर सहस्र खण्डों में चूर्ण नहीं हो जाता है, वह तो वज्र का ही कहा जायेगा। अतः धनहीन पुरुष विवाह से धर्म-अर्थ-काम-सिद्धि को कैसे प्राप्त कर सकेगा? उसके लिये तो स्त्री मात्र दुःख देने वाली ही होगी। जैसे स्त्रीरहित व्यक्ति को गृहस्थाश्रम सम्बन्धित कोई अधिकार नहीं होता, धनरहित पुरुष का भी किसी कार्य में अधिकार नहीं होता॥१२-१४॥

केचित्त्वपत्यमेवाहुस्त्रिवर्गावाप्तिसाधनम्। पुंसामर्थः कलत्रं च येऽन्ये नीतिविदो विदुः॥ १५॥

धर्मोऽपि द्विविधो यस्मादिष्टापूर्तक्रियात्मकः। स च दारात्मकः सर्वं ज्ञेयमर्थैकसाधनम्॥ १६॥

निजेनापि दरिद्रेण लोको लज्जति बन्धुन॥ परोऽपि हि मनुष्याणामैश्वर्यात्स्वजनायते॥ १७॥

न दरिद्रं समीपेऽपि स्थितवन्तं प्रपश्यति। दूरस्थमपि वित्ताढ्यमादराद्भजते जनः॥ १८॥

कतिपय विद्वान् त्रिवर्ग प्राप्ति का साधन सन्तान को ही ठहराते हैं, वहीं कतिपय लोग (नीतिज्ञ लोग) स्त्री एवं धन को ही त्रिवर्ग का साधन कहते हैं। इष्टधर्म तथा पूर्तधर्म भी स्त्री तथा धन के अभाव में सम्पन्न नहीं हो सकते। इष्ट धर्म है अग्निहोत्र, तप, सत्य, यज्ञ, दान, वेदरक्षा, आतिथ्य, वैश्वदेव तथा ध्यानादि। पूर्तधर्म है बाबली, कूप, तालाब, देवमन्दिर, धर्मशाला, बाग आदि का निर्माण। ये धर्म-कार्य स्त्री के अभाव में नहीं हो सकते तथा स्त्री के साथ गृहस्थधर्म पालनार्थ धन अत्यावश्यक है। अतः धन ही मुख्य सहायक है। इष्ट तथा पूर्त—दोनों धर्मों का एकमात्र साधन धन ही हो सकता है। जो दरिद्र भ्राता है, उसे अन्य भ्राता अपना भाई कहने में लज्जित होते हैं। दूसरी ओर लोग उससे स्वजन की तरह व्यवहार करते हैं जो ऐश्वर्यवान् है तथा कोई भी सम्बन्ध जिससे नहीं रहा है। अपने पड़ोसी दरिद्र को लोग नहीं पहचानते। उधर दूरदेशवासी धनिक की सादर सेवा करते हैं॥१५-१८॥

तस्मात्प्रयत्नतः पूर्वमर्थमेव प्रसाधयेत्। स हि मूलं त्रिवर्गस्य गुणानां गौरवस्य च॥ १९॥

सर्वेऽपि हि गुणा विद्याकुलशीलादयो नृणाम्। सन्ति तस्मिन्नसन्तोऽपि सन्ति सन्तोऽपि नासति॥ २०॥

शास्त्रं शिल्पं कलाः कर्म यच्चान्यदपि चेष्टितम्। साधनं सर्वमर्थानामर्था धर्मादिसाधनाः॥ २१॥

साधनानां त्रिवर्गोऽस्ति तं विना केवलं नृणाम्। अजागलस्तनस्येव निधनायैव सम्भवः॥ २२॥

प्राक्पुण्यैर्विपुला सम्पद्धर्मकामादिहेतुजा। भूयो धर्मेण सामुत्र तथा ताविति च क्रमः॥ २३॥

एकचक्रकमेतद्धि प्रोक्तमन्योन्यहेतुकम्। पूर्वपश्चिमबाहुभ्यामुत्तराधरमध्यमाः॥ २४॥

विज्ञाय मतिमानेवं यस्त्रिवर्गं निषेवते। संख्याशतसमायुक्तैरवाप्नोत्युत्तरोत्तरम्॥ २५॥

यह सब देखकर मानव सभी प्रयत्नों के साथ पहले अर्थसाधन करे। यही त्रिवर्ग का साधन, गौरव तथा सर्वगुणमूल भी है। विद्या, कुलीनता, शील आदि गुण धनिक में न होकर भी हैं। उधर निर्धन में यदि ये सब गुण हैं भी, तब भी (लोक दृष्टि में) नहीं हैं। सभी शास्त्र, शिल्प, कला, कर्म तथा संसार के सर्वकृत्य धन प्राप्ति के साधनभूत हैं। धन तो धर्मादि का भी साधन है। अतः धन ही त्रिवर्ग का साधन है। यदि धन नहीं है तब मनुष्य जीवन वैसे ही व्यर्थ है जैसे बकरी के गले में लटका स्तन। वह केवल मृत्यु का ग्रास ही है। पूर्वजन्मार्जित महत् सुकृति से धर्म, अर्थ, काम साधक विपुल धन-सम्पत्ति मिलती है। इस सम्पत्ति से धर्मादि कार्य किये जाते हैं। अतः धन एवं धर्म का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। ये दोनों एक ही चक्रावयव हैं। इनका सम्बन्ध अन्योन्यहेतुक

है। रथ के चक्रद्वय से ही उसके आगे, पीछे तथा मध्यभाग का ज्ञान होता है। जो समझ-बूझकर त्रिवर्ग को अर्जित करता है, वह शतवर्ष की दीर्घायु पाकर क्रमशः कल्याण एवं सुखानुभव करता है॥१९-२५॥

नाभार्यस्याधिकारोऽस्ति त्रिवर्गे निर्धनस्य वा। ना भार्यायामतः पूर्वमर्थमेव प्रसाधयेत्॥ २६॥
तस्मात्क्रमागतैरर्थैः स्वयं वाधिगतैर्युतः। क्रियायोग्यैः समर्थश्च कुर्याद्धारपरिग्रहम्॥ २७॥
अनुरूपे कुले जातां श्रुतवित्तक्रियादिभिः। लभेतानिन्दितां कन्यां मनोज्ञां धर्मसाधनाम्॥ २८॥
पुमानर्धपुमांस्तावद्यावद्भार्या न विदन्ति। तस्माद्यथाक्रमं काले कुर्याद्धारपरिग्रहम्॥ २९॥

पूर्वोक्त प्रकार से त्रिवर्ग हेतु स्त्रीविहीन तथा धनहीन का कोई अधिकार ही नहीं होता। धनविहीन के लिये तो स्त्री प्राप्त करना भी दुःखद हो जाता है। अतः सर्वाग्र में धनार्जन ही करे। इसलिये क्रमशः अर्जित (श्रम से) किये गये अथवा बिना परिश्रम से प्राप्त पर्याप्त धन एकत्र करे। तब क्रियाओं को यथाविधि सम्पन्न करके स्त्री परिग्रह करे। व्यक्ति अपने समान विद्या धन तथा सम्पन्नता युक्त कुलोत्पन्न, मनोहरा, धर्मसाधनभूत, प्रशंसित कन्या का परिग्रह करे। बिना पत्नी परिग्रह किये पुरुष कदापि पूर्ण पुरुष नहीं है। वह अर्धपुरुष है। अतः वह उपर्युक्त क्रम से, समयानुकूल कन्या स्त्री से विवाह करे॥२६-२९॥

एकचक्रो रथो यद्वदेकपक्षो यथा खगः। अभार्योऽपि नरस्तद्वदयोग्यः सर्वकर्मसु॥ ३०॥
पत्नीपरिग्रहाद्धर्मस्तथार्थो बहुलाभतः। सत्प्रीतियोगात्कामोऽपि त्रयमस्यां विदुर्बुधाः॥ ३१॥
त्रिधा विवाहसम्बन्धो हीनतुल्याधिकैः सह। तुल्यैः सह समस्तेषामितरौ नीचमध्यमौ॥ ३२॥
असमैर्निन्द्यते सद्भिरुत्तमैः परिभूयते। तुल्यैः प्रशस्यते यस्मात्तस्मात्साधुतमो मतः॥ ३३॥
कृत्वैवाधिकसम्बन्धमपमानं समश्नुते। न चैषामानतिं गच्छेन्नैव नीचैः सहेष्यते॥ ३४॥
उत्तमोऽपि च सम्बन्धो नीचैस्तत्समतां व्रजेत्। अतस्तं वर्जयेद्धीमात्रिन्दितं सदृशोत्तमैः॥ ३५॥
विजातीयैश्च सम्बन्धं सहेच्छन्ति न सूरयः। उभयोर्भ्रश्यते तेन यथा कोकिलया शुकः॥ ३६॥

जिस प्रकार एक पहिया वाला रथ नहीं चल सकता तथा एक पंख का पक्षी उड़ नहीं सकता, उसी प्रकार स्त्री के बिना पुरुष सभी कार्यों में अयोग्य है। पत्नी परिग्रह द्वारा धर्म के अनेक लाभ तथा धन से परस्पर सच्ची प्रीति तथा काम प्राप्ति होती है। विद्वान् लोग तीन प्रकार के विवाहों का वर्णन करके उसके द्वारा त्रिवर्ग प्राप्ति का फल बतलाते हैं। विवाह हीन, समान तथा उच्च भेद से तीन प्रकार के होते हैं। असमान के यहाँ विवाह करना साधुगण द्वारा निन्दित कहा गया है। उत्तम श्रेष्ठ उच्च कुल में विवाह करने से अनादर मिलता है। समान स्थिति वाले कुल में विवाह करना सर्वोत्तम है। अपने से उच्च स्थिति वाले के यहाँ विवाह करने वाला सदैव अपमानित होता है। अतः मनुष्य ऐसा विवाह करके अपमान क्यों सहे? अपने से नीच के यहाँ विवाह तो कदापि न करे। जैसे अपने से उत्तम कुल में विवाह वर्जित है, उसी प्रकार से नीच सम्बन्ध करने वाला नीच हो जाता है। अतः सुधी व्यक्ति उत्तम की ही तरह नीच कुल को भी वर्जित ही माने। जो विद्वान् हैं, वे अन्य जाति में विवाह नहीं करते। इससे दोनों कुलभ्रष्ट हो जाते हैं। जैसे कोकिला के साथ शुक॥३०-३६॥

तद्भाति कुलबाह्यत्वादवश्यं चावमानतः। प्रतिपत्तेरशक्यत्वाच्चोत्तमोऽपि न शस्यते॥ ३७॥
एकेऽपि परिहर्तव्या अन्ये परिहरन्त्युत। तस्माद्द्वावपि नैवेष्टौ सम्बन्धावधमोत्तमौ॥ ३८॥
एकपात्रादिभिर्येषामुपचारैः परस्परम्। प्रत्यहं वर्धते स्नेहः सम्बन्धः सोऽभिधीयते॥ ३९॥
यत्रावाहविवाहादावन्योऽन्याः प्रतिपत्तयः। स्पर्धयैव प्रवर्धन्ते तं सम्बन्धं विदुर्बुधाः॥ ४०॥
व्यसनेऽभ्युदये वापि येषां प्राणैर्धनैरपि। सहैकप्रतिपत्तित्वं सम्बन्धानां स उत्तमः॥ ४१॥

यद्यपि उच्च कुल में विवाह करने से नीच कुल वाले की शोभा तो बढ़ती है, तथापि बराबरी वाले सामर्थ्य के अभाव में अपमान के कारण वह दुःख सहता है। अतः उत्तम कुल में विवाह प्रशंसित नहीं है। नीच कुल अथवा उच्च कुल को बेमेल विवाह मानकर लोग अच्छा नहीं मानते। अतः इस सम्बन्ध हेतु उत्तम तथा निम्नकुल वर्जित है। वही सम्बन्ध यथार्थ सम्बन्ध है, जहाँ

सत्पात्रजनित व्यवहार में नित्य पारस्परिक प्रेम बढ़ता रहे। जिन विवाह आदि सम्बन्ध में पारस्परिक गौरव तथा सम्मान रक्षार्थ स्नेहवर्द्धन होता है, वही वास्तविक सम्बन्ध है। जो कुल पस्परतः अभ्युदय तथा संकट, दोनों स्थिति में पारस्परिक सहयोग तथा धन से तथा प्राण-पन से एक-दूसरे हेतु सहायतार्थ सन्नद्ध रहते हैं, वही श्रेष्ठ सम्बन्ध है॥३७-४१॥

स्नेहव्यक्तौ मनुष्याणां द्वावेव निकषोपलौ। तथा कृतज्ञतायां च व्यसनाभ्युदयागमौ॥ ४२॥
स च स्नेहो नृणां प्रायः समेष्वेव हि दृश्यते। साम्यं चाप्युपगन्तव्यं वित्तशीलकुलादिभिः॥ ४३॥
तस्माद्विवाहसम्बन्धं सख्यमेकान्तकारिणाम्। सदृशैरेव कुर्वीत नोत्तमेनाप्यनुत्तमैः॥ ४४॥

॥ इति श्रीभविष्यमहापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि
स्त्रीलक्षणसद्वृत्तवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

मनुष्य के कृतज्ञता गुण तथा स्नेह का आकलन करने के दो उपाय हैं, प्रथम है— अभ्युदय तथा द्वितीय है— उसकी संकटावस्था मनुष्य का स्नेह-सम्बन्ध समान स्थिति वालों में होता है। यह जानकर विद्वान् पुरुष को सदा मित्रता एवं विवाहादि सम्बन्ध समान स्थिति वाले से करना चाहिये। उत्तम तथा निम्न से करना उचित नहीं है॥४२-४४॥

॥ श्रीभविष्यमहापुराण के शतार्ध साहस्री नामक संहिता के ब्राह्मपर्व में
स्त्रीलक्षणसद्वृत्त का वर्णन नामक छठा अध्याय पूर्ण हुआ ॥६॥

☆☆☆